www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
गुरुवार 11 अप्रैल 2019

दैनिक जागरण
अगर जवाब चाहते हैं तो सवाल पूछिए

मोदी और मुस्लिम जगत

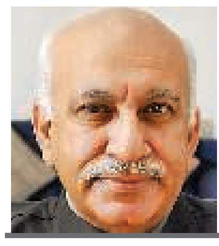

एमजे अकबर

इस पर यकीन कर पाना कठिन है कि भारतीय मुसलमान उस बात को नहीं समझते जो शेष दुनिया के मुस्लिम समझ पा रहे हैं

इन आम चुनावों में बड़े विरोधाभास दिख रहे हैं। चुनावी पंडितों का अनुमान है कि भारतीय मुसलमान प्रधानमंत्री मोदी के पक्ष में मतदान नहीं करेंगे। दूसरी ओर किसी अन्य प्रधानमंत्री को मुस्लिम जगत से उतना समर्थन नहीं मिला जितना पीएम मोदी को मिला। संयुक्त अरब अमीरात और सऊदी अरब के नेतृत्व में खाड़ी देशों ने पीएम मोदी के पहले कार्यकाल के दौरान कई मोर्चों पर भारत में भारी निवेश किया है। आज भारत में यूएई के तेल का संचित भंडार मौजूद है। भारत, सऊदी अरब और यूएई 44 अरब डॉलर की लागत से बनने वाली रिफाइनरी बनाने के लिए सहमत हुए हैं। उनके प्रत्यक्ष निवेश का आंकड़ा भी 10 अरब डॉलर से अधिक हो गया है। मोरक्को में हमने आधुनिक तकनीक वाले पुल बनाए हैं। साथ ही उत्तरी और सब-सहारा अफ्रीका में हमारी मौजूदगी बढ़ी है। इंडोनेशिया के साथ संबंधों में व्यापक सुधार हुआ है। पश्चिम एशिया के साथ संबंध भी पटरी पर लौटे हैं। सुरक्षा और आतंकवाद के मसले पर हम अधिकांश शक्तिशाली अरब देशों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रहे हैं। बीते चार साल में जो भगोड़े सुरक्षित ठिकाने की आस में खाड़ी देशों में गए थे, उन्हें वापस लाया जा रहा है। पाकिस्तान को छोड़कर समस्त मुस्लिम जगत इस समय सीमा-पार आतंकवाद को लेकर भारत के रुख का समर्थन कर रहा है।

एक समय दुबई को लेकर यह धारणा थी कि वह भारत से वित्तीय घपले करके भागने वालों का सुरक्षित ठिकाना है, लेकिन आज ऐसे भगोड़े भारत को सौंपे जा रहे हैं। इससे उन ताकतवर नेताओं के साथ उनके गहरे जुड़ाव की परतें भी खुल रही हैं जिन्हें उन्होंने रिश्वत खिलाई थी। एक वक्त कांग्रेस ने बिचौलियों को देश से भागने में मदद की, लेकिन अब अगस्ता हेलीकॉप्टर मामले में दलाली खाने वालों को भारत में वापस लाने में सफलता मिली। पीएम मोदी की विदेश नीति और उसका शानदार प्रबंधन करने वाली विदेश मंत्री सुषमा स्वराज की सबसे बड़ी सफलता यह है कि उन्होंने सभी पक्षों को अद्भुत तरीके से साधा। इजरायल से हमारे रिश्ते और परवान चढ़े। बेंजामिन नेतन्याहू भारत का दौरा करने वाले पहले इजरायली पीएम बने। इसके साथ ही इजरायल के इर्दगिर्द अरब जगत के साथ हमारे रिश्तों की बुनियाद और मजबूत होती गई। 2018 में मोदी फलस्तीन का दौरा करने वाले भारत के पहले प्रधानमंत्री बने। उन्हें वहां का सर्वोच्च नागरिक सम्मान मिला। इसके बाद सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात ने भी उन्हें अपने सबसे बड़े सम्मान से नवाजा। इसी दौरान ईरान के साथ हमारे संबंध और प्रगाढ़ हुए। चाबहार बंदरगाह के विचार ने भी मूर्त रूप ले लिया। यह कूटनीति की उत्कृष्टता का प्रमाण है।

यह कोई संयोग नहीं कि यूएई ने अपनी जमीन पर पहला हिंदू मंदिर बनाने की स्वीकृति दी। क्राउन प्रिंस मोहम्मद बिन जायद अल नाहयान के नेतृत्व में यूएई ने स्थानीय हिंदुओं की एक बड़ी आबादी की जरूरत पर उचित प्रतिक्रिया दी। इसमें पीएम मोदी के साथ उनकी मित्रता ने अप्रत्याशित भूमिका निभाई। जरा अतीत के असंतुलन से तुलना कीजिए जब अक्सर लगता था मानो हम एक ही दिशा में चले जा रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू मिस्र के राष्ट्रपति नासिर के इतने अनन्य मित्र थे कि इस दोस्ती की खातिर भारत ने इजरायल से कोई रिश्ता ही नहीं रखा, जबकि 1950 के दशक में अधिकांश अरब देशों की पसंद पाकिस्तान हुआ करता था।

उस समय सऊदी अरब का दिल्ली के साथ नाममात्र का ही रिश्ता था। नेहरू की विदेश नीति की कड़वी हकीकत उनके निधन के एक साल बाद तब सामने आई जब 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध के दौरान इंडोनेशिया, ईरान, जॉर्डन और सऊदी जैसे मुस्लिम देशों ने पाकिस्तान का समर्थन किया। नेहरू ने कई साल सुकर्णो के नाम किए थे। इंदिरा गांधी ने भले ही यासिर अराफात को फलस्तीन का नायक बताकर पलक-पांवड़े बिछा दिए हों, लेकिन मुस्लिम जगत ने 1968 में उन्हें सार्वजनिक रूप से शर्मिंदा ही किया जब ओआइसी में शामिल होने के लिए गए भारतीय प्रतिनिधिमंडल को पाकिस्तानी तानाशाह याह्या खान की खुशामद के लिए अलग-थलग कर दिया गया। 1970 के दशक में लीबिया ने भारत के खिलाफ परमाणु हथियारों का जखीरा बनाने के लिए पाकिस्तान को वित्तीय मदद पहुंचाई। उस समय सीरिया और इराक जैसे अरब देश ही भारत के पक्ष में खड़े थे।

पड़ोसी बांग्लादेश के साथ हमारे संबंध बड़ी सावधानी के साथ आगे बढ़े, लेकिन पीएम मोदी के दौर में उन्हें एक नया क्षितिज मिला। पूरब की ओर बढ़ें तो इंडोनेशिया के साथ हमारे रिश्ते आज इतने सकारात्मक पड़ाव पर हैं कि उसके साथ व्यापार में बहुत तेजी आई है। इंडोनेशिया अंडमान से लगा हुआ है और हम इस विस्तृत द्वीप समूह में एक बंदरगाह विकसित करने पर काम कर रहे हैं। मोदी जो बदलाव लाना चाहते थे उसे उन्होंने अपनी विलक्षण निजी कूटनीति के जरिये भी अंजाम दिया। बीते 36 वर्षों में यूएई का दौरा करने वाले वह पहले प्रधानमंत्री बने। उनसे पहले जब सोनिया और राहुल सत्ता की कमान और डॉ. मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री पद संभाले हुए थे तब दस साल तक भारतीय प्रधानमंत्री के पास उस देश का दौरा करने का वक्त नहीं था जहां लाखों भारतीय आजीविका के लिए बसे हैं। मुस्लिमों के प्रति कांग्रेस की नीति केवल अतीत की औपचारिक निरंतरता वाली ही रही जिसमें कल्पनाशीलता और नई पहल का अभाव होने के कारण वह शिथिल पड़ गई। इस बदलाव को हाल में आयोजित इस्लामिक देशों के संगठन में भारत को मिले आमंत्रण से बेहतर कुछ और नहीं दर्शा सकता। 1968 में इसी समूह ने भारत के लिए दरवाजे बंद कर दिए थे। अब उसने एक खिड़की खोली है। 1968 में पाक ने भारत का बहिष्कार कराया था। 2019 में पाकिस्तान ने धमकी दी कि अगर सुषमा स्वराज को ओआइसी के मंच पर बोलने दिया गया तो वह इस आयोजन का बहिष्कार करेगा। ओआइसी के 57 में से 56 देशों ने पाकिस्तान को स्पष्ट कह दिया कि वह ऐसा करना चाहता है तो करे, लेकिन भारत को भेजा बुलावा निरस्त नहीं किया जाएगा। इसे किसी भी भाषा में बड़ी कूटनीतिक विजय ही कहा जाएगा।

पाक को छोड़कर दुनिया के तमाम मुस्लिम देश पीएम मोदी पर भरोसा कर रहे हैं। आखिर वे मोदी के साथ काम क्यों करना चाह रहे हैं? पहला कारण यह है कि वे जानते हैं कि भारतीय पीएम पक्षपाती नहीं हैं। वे यह समझते हैं कि मोदी का एकमात्र मकसद है भारतीय हितों की रक्षा करना। दूसरा कारण यह है कि उन्होंने महसूस किया है कि मोदी के नेतृत्व में भारत एशिया और दुनिया की बड़ी आर्थिक-सामरिक ताकत बनने की राह पर है। मैं नहीं मानता कि भारतीय मुस्लिम उस बात को नहीं समझते जो शेष दुनिया के मुस्लिम समझ पा रहे हैं। किसी भी लोकतंत्र में एक खास चीज होती है जिसे अदृश्य वोट कहा जाता है, जो कई कारणों से खुद को प्रदर्शित नहीं करता। यह बात भारतीय मुसलमानों पर भी लागू होती है। 23 मई को नतीजे सामने आने के बाद जब चुनावी विशेषज्ञ आंकड़ों की छानबीन करेंगे तो वे मोदी के पक्ष में पड़े अदृश्य वोट देख पाएंगे। हर सर्वे में मोदी को फिर से चुने जाने के कारणों में विदेश नीति का उल्लेख प्रमुखता से हो रहा है। भारतीय मुसलमानों पर असर डालने वाला यह एक अतिरिक्त पहलू है।

(लेखक पूर्व केंद्रीय मंत्री एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

अवधेश राजपूत

राफेल का सच-झूठ

राफेल सौदे पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला निश्चित रूप से मोदी सरकार के मन मुताबिक नहीं है, लेकिन इस फैसले का वह भी मतलब नहीं है जो कांग्रेस और कुछ अन्य दलों के नेताओं की ओर से पेश किया जा रहा है। चूंकि चुनावी माहौल में राजनीतिक दल हर छोटे-बड़े मसले को तूल देते हैं इसलिए इस पर हैरत नहीं कि कुछ नेता सुप्रीम कोर्ट के ताजा फैसले को अपनी जीत बताने में जुट गए हैं, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि जब सुप्रीम कोर्ट ने राफेल सौदे को क्लीन चिट दी थी तो कांग्रेस ने उस पर गौर करने से इन्कार करते हुए चौकीदार को चोर बताने का सिलसिला कायम रखा था। तब उसका यह भी तर्क था कि हम तो सुप्रीम कोर्ट गए ही नहीं थे और हमारी मांग यह है कि संयुक्त संसदीय समिति से इस सौदे की जांच हो। राफेल सौदे पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले के खिलाफ दायर पुनर्विचार याचिकाओं की सुनवाई होनी ही थी। इन याचिकाओं की सुनवाई को लेकर सरकार ने यह दलील दी थी कि चोरी से हासिल किए गए दस्तावेजों का संज्ञान नहीं लिया जाना चाहिए। यह एक कमजोर दलील थी और उसके खारिज होने के आसार थे, लेकिन यह समझना कठिन है कि सुप्रीम कोर्ट को यह तय करने में इतना वक्त क्यों लग गया कि किसी मामले की सुनवाई में चोरी से हासिल किए गए दस्तावेजों का संज्ञान लिया जा सकता है या नहीं?

अब जब सुप्रीम कोर्ट ने यह साफ कर दिया है कि विशेषाधिकार वाले और साथ ही गोपनीयता अधिनियम के दायरे में आने वाले दस्तावेजों को किसी मामले की सुनवाई का हिस्सा बनाया जा सकता है तब फिर जरूरी यह है कि वह अपना अंतिम फैसला यथाशीघ्र दे। इसका कोई औचित्य नहीं कि राष्ट्रीय महत्व के एक जरूरी सौदे की सुनवाई लंबे समय तक सुप्रीम कोर्ट में अटकी रहे। यह ठीक नहीं कि अभी भी यह तय नहीं कि पुनर्विचार याचिकाओं पर सुनवाई कब से शुरू होगी? इस मामले में अंतिम फैसला देने में इसलिए देर नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि कुछ राजनीतिक दल राफेल सौदे में गड़बड़ी को चुनावी मुद्दा बनाने की कोशिश में हैं। स्वाभाविक तौर पर कांग्रेस इसमें सबसे आगे है। इसमें हर्ज नहीं, लेकिन यह विचित्र है कि उसके नेता न्यायाधीश की तरह व्यवहार करने में लगे हुए हैं। इतना ही नहीं, वे झूठ का भी सहारा ले रहे हैं। उनकी मानें तो सुप्रीम कोर्ट ने यह मान लिया है कि वायुसेना की 30 हजार करोड़ की राशि अनिल अंबानी को दी गई। आखिर यह कोरा झूठ नहीं तो क्या है? कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी राफेल सौदे पर प्रधानमंत्री को खुली बहस की चुनौती भी दे रहे हैं, लेकिन यह स्पष्ट नहीं कर रहे कि क्या वह अगस्ता वेस्टलैंड हेलिकॉप्टर खरीद और नेशनल हेराल्ड मामले पर भी बहस करने को तैयार हैं? जो भी हो, अगर राहुल गांधी के पास राफेल सौदे में गड़बड़ी का वैसा कोई सुबूत है जैसे बोफोर्स तोप सौदे या फिर अगस्ता वेस्टलैंड हेलिकॉप्टर सौदे में सामने आए थे तो फिर वे सार्वजनिक किए जाने चाहिए या फिर सुप्रीम कोर्ट को सौंपे जाने चाहिए।

पहाड़ पर मुद्दा विकास

लोकसभा चुनाव में पिछले तीन दशकों में पश्चिम बंगाल में ऐसा पहली बार हो रहा है कि पहाड़ी क्षेत्र दार्जिलिंग में अलग राज्य की मांग मुद्दा नहीं है। वहां गोरखा जनमुक्ति मोर्चा (गोजमुमो) का विमल गुरुंग गुट हो या फिर विनय तामांग गुट या फिर जीएनएलएफ सहित अन्य पार्टियां अलग गोरखालैंड की पुरानी मांग से अधिक चाय बागान श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी, पीने योग्य पानी, बिजली, शिक्षा और रोजगार के अवसरों की मांग पर अधिक जोर दे रही हैं। हालांकि गोजमुमो के भूमिगत नेता विमल गुरुंग ने कुछ दिन पहले एक न्यूज एजेंसी को दिए साक्षात्कार में कहा था कि गोरखालैंड राज्य का मुद्दा नहीं छोड़ा है। परंतु इस बार वह सक्रिय रूप से चुनाव में सामने नहीं हैं। दार्जिलिंग लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र में 18 अप्रैल को मतदान होगा, जिसमें गोरखा जनमुक्ति मोर्चा के दो गुट एक-दूसरे को टक्कर देते दिखेंगे। इसमें एक गुट का नेतृत्व विमल गुरुंग और दूसरे का विनय तामांग कर रहे हैं। गुरुंग यहां भाजपा के उम्मीदवार राजू सिंह बिष्ट का समर्थन कर रहे हैं, वहीं तामांग तृणमूल कांग्रेस के टिकट पर मैदान में उतरे अमर सिंह राई के पक्ष में हैं। भगवा दल को प्रमुख स्थानीय दल, 'गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट (जीएनएलएफ) का भी समर्थन हासिल है। इस सीट पर 16 उम्मीदवार भाग्य आजमा रहे हैं। इनमें बिष्ट और राई के अलावा माकपा के समन पाठक और कांग्रेस के शंकर मालाकार प्रमुख हैं। पाठक ने आशा व्यक्त करते हुए कहा कि लोग माकपा को वोट करेंगे, क्योंकि तृणमूल और भाजपा दोनों ने लोगों का भरोसा खो दिया है। गोजमुमो विमल गुट के कार्यकारी अध्यक्ष लोकसांग लामा ने कहा, चुनाव से यह साफ हो जाएगा कि यहां पहाड़ में गुरुंग और तामांग में से बड़ा नेता कौन है। पहाड़ के लोग गुरुंग के साथ हैं। तामांग ने निजी हितों के चलते तृणमूल से समझौता कर लिया है। सत्तारूढ़ तृणमूल ने 1998 में अपने गठन के बाद से केवल एक बार दार्जिलिंग सीट जीती है वहीं भाजपा दो बार यहां से जीत का स्वाद चख चुकी है। तृणमूल कांग्रेस के उम्मीदवार अमर सिंह राई ने कहा, हम पहाड़ के पूर्ण विकास पर जोर दे रहे हैं। यह अच्छी बात है कि विकास मुद्दा बना है, जिससे सबको भला होगा।

अहितकारी है अल्प मतदान

तरुण गुप्त

बहुमत न मिलने पर चुनाव टालने के लिए गठजोड़ बनाना सही है, लेकिन खंडित जनादेश की इच्छा जताना मूर्खता ही है

चुनावी महापर्व के दौरान राजनीतिक विश्लेषण और अटकलों के साथ-साथ सूचनाओं के प्रवाह के चलते लोग अक्सर या तो किसी एक खेमे से जुड़कर ध्रुवीकृत हो जाते हैं या फिर दुविधा के शिकार बन जाते हैं। ऐसे में सबसे पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि सभी मतदाता अनिवार्य रूप से मतदान करें। मतदान से बचना या फिर नोटा विकल्प चुनना कर्तव्य से विमुख होना है। इससे निराशा का आभास होता है। अगर किसी समाज के कुछ लोग शंकालु हो जाएं तो भी वह प्रगति कर सकता है, लेकिन उसमें निराशा के लिए कोई जगह नहीं हो सकती। अब मतदान के सैद्धांतिक पहलुओं को किनारे रखकर उसके गणितीय आंकड़ों पर चर्चा करते हैं। मान लीजिए किसी निर्वाचन क्षेत्र में सौ लोग रहते हैं और उनमें से 70 प्रतिशत यानी 70 मतदाता हैं। वहां यदि 60 प्रतिशत मतदान हुआ तो इसका अर्थ है केवल 42 ने मत दिया। भारत में बहुदलीय तंत्र और फर्स्ट पास्ट द पोस्ट यानी सबसे अधिक मत हासिल करने पर जीत वाली प्रणाली होने की वजह से अक्सर यह दिखता है कि महज 33 प्रतिशत यानी लगभग 14 वोट पाने वाला प्रत्याशी भी जीत सकता है। सौ में 30 लोग बालिग नहीं हैं जबकि 28 मतदाताओं ने अपना मत प्रयोग नहीं किया। जिन 42 ने वोट दिया उनमें से भी 28 ने उस प्रत्याशी को खारिज किया और किसी अन्य का चयन किया, परंतु केवल 14 वोटों के दम पर ही उस प्रत्याशी का चुनाव हो जाता है। आखिर ऐसा विधि निर्माता कितने सच्चे अर्थों वाला जनप्रतिनिधि होगा? अधिकांश लोगों ने उसके बजाय किसी अन्य को वरीयता दी, लेकिन फर्स्ट पास्ट द पोस्ट और बहुदलीय प्रणाली की जुगलबंदी उनकी पसंद पर पानी फेर देती है।

हमारी विविधता और संघीय ढांचे को देखते हुए द्वि-दलीय व्यवस्था की ओर कदम बढ़ाना व्यावहारिक नहीं होगा और फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम भले ही आदर्श न हो, लेकिन लोकतंत्र चलाने के लिए यही बेहतरीन विकल्प है। फिर भी लक्ष्य यही होना चाहिए कि जनप्रतिनिधि वही बने जिसका चुनाव ज्यादा से ज्यादा लोगों के मतों से हो। इसका सबसे सरल तरीका यह है कि अधिक से अधिक मतदान किया जाए। वास्तव में यही एकमात्र पहलू है जो हमारे नियंत्रण में है। अगर हम शत प्रतिशत मतदान सुनिश्चित करने के साथ ही उपरोक्त उदाहरण के अन्य अनुपातों को यथावत रखें तब भी इतना तो हो ही जाता है कि पहले जो प्रत्याशी 14 वोट पाकर जीत रहा था उसका आंकड़ा बढ़कर 23 तक जा सकता है। हालांकि यह भी आदर्श स्थिति नहीं, लेकिन इस अपूर्ण संसार में अभीष्ट की अधिक प्राप्ति अवश्य होगी। इसके लिए इलेक्ट्रॉनिक मतदान का प्रावधान करना होगा ताकि अधिक से अधिक लोग मतदान कर सकें। हालांकि जब तक ऐसा नहीं होता तब तक सभी मतदाताओं को चाहिए कि वे अपने मत का प्रयोग हर हाल में करें। एक ऐसे संसदीय चुनाव में जहां लगभग अखिल भारतीय स्तर पर मौजूदगी वाले दो राष्ट्रीय दल एवं विभिन्न भौगोलिक अंचलों में ढेरों क्षेत्रीय दल भी चुनावी प्रतिस्पर्धा में जुटे हों वहां किसी एक विकल्प को चुनना खासा जटिल हो जाता है और यह सवाल खड़ा हो जाता है कि वोट करें तो किसके लिए?

आम धारणा यह है कि स्पष्ट जनादेश वाली स्थिर सरकार ही निर्णायक नेतृत्व के लिए आवश्यक है। हालांकि समय के साथ इसका विरोधाभासी दृष्टिकोण भी विकसित हुआ है। कुछ जानकारों का मानना है कि एक पार्टी की सरकार में तानाशाही प्रवृत्ति पनपने की आशंका होती है। पूर्ण बहुमत वाली सरकारों के संदर्भ में उनका यह भी तर्क है कि वे लोकतांत्रिक संस्थानों को समुचित सम्मान न देकर उनके राजनीतिकरण की कोशिश करती हैं। ये जानकार गठबंधन सरकारों का इस आधार पर महिमामंडन करते हैं कि वे भारत के संघीय ढांचे का कहीं बेहतर प्रतिनिधित्व करती हैं और उनमें दबाव एवं जुड़ाव के अंतर्निहित तंत्र से किसी को तानाशाह बनने से भी रोका जा सकता है। ये तर्क कम कुतर्क ज्यादा हैं। ऐसे लोगों में एक तबका अपने हितों से प्रेरित है, जो मौजूदा सरकार और उसके शीर्ष नेतृत्व के खिलाफ अपनी नफरत के भाव के चलते एकजुट है। किसी पूर्ण बहुमत सरकार के स्थान पर अस्थिरता को प्राथमिकता देना तार्किक कम और व्यक्तिगत धारणा और द्वेष आधारित अधिक प्रतीत होता है।

अक्सर कहा जाता है कि अतीत में भारत ने गठबंधन सरकारों के दौर में तेज वृद्धि हासिल की। इसकी भी पड़ताल करते हैं। 1989 से 1999 के बीच पांच आम चुनाव हुए। इस दौरान छह प्रधानमंत्री बने। चुनावों के चलते सरकारी खजाने पर पड़े बोझ के अलावा हम अस्थिर सरकारों के कारण चुकाई जाने वाली आर्थिक कीमत से भी परिचित हैं। कोई यह दलील भी दे सकता है कि 1991-96 के दौरान नरसिंह राव सरकार, 1998 से 2004 के बीच वाजपेयी सरकार के दो कार्यकाल और मनमोहन सिंह के नेतृत्व में दस साल रही संप्रग सरकार गठबंधन की होने के बावजूद कमोबेश स्थिर रहीं और उन्होंने कई मोर्चों पर शानदार प्रदर्शन किया। इन सरकारों की विशेषताओं और विफलताओं पर विस्तार से चर्चा करने के बजाय हम यह देखें कि इनमें एक अहम समानता यह थी कि ये गठजोड़ असंगत मिश्रण नहीं थे और इनका नेतृत्व ऐसी मजबूत पार्टियां कर रही थीं जो अपने बल पर बहुमत से दूर होने के बावजूद संख्या बल में काफी दमदार थीं। इस लिहाज से गठबंधन का नेतृत्व करने के लिए उपयुक्त थीं। गठबंधन सरकारों की वास्तविक तस्वीर देखने के लिए हमें 1989 से 1991 के बीच वीपी सिंह सरकार और चंद्रशेखर सरकार, 1996-1998 के बीच देवेगौड़ा और गुजराल सरकार और उससे भी पहले 1977-80 के बीच मोरारजी देसाई और चरण सिंह सरकार के प्रदर्शन पर भी नजर डालनी होगी। हमें असफल प्रयोगों को विस्मृत नहीं करना चाहिए।

यह सही है कि पूर्ण बहुमत वाली एकदलीय सरकार को तानाशाह नहीं बनने दिया जा सकता। निगरानी और नियंत्रण का संतुलन कायम रहना चाहिए और इसके लिए संविधान ने स्वतंत्र न्यायपालिका, प्रमुख लोकतांत्रिक अंगों की संस्थागत स्वायत्तता, मुखर मीडिया, मूल अधिकार और स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव की व्यवस्था की है। लोकतंत्र को और बेहतर बनाने के लिए स्थिरता से समझौता करने के बजाय उसे और प्रभावी बनाया जा सकता है। बहुमत न मिलने पर तत्काल चुनाव टालने और सरकारी खर्च बचाने के लिए गठबंधन सही हो सकता है, लेकिन चुनाव से पहले ही खंडित जनादेश की अभिलाषा और उसके पक्ष में तर्क देना मूर्खता ही कहा जाएगा। यह तो 23 मई को ही स्पष्ट होगा कि जनादेश बहुमत वाली सरकार के लिए होगा या फिर गठबंधन के लिए, लेकिन याद रखें कि पूर्णता सिर्फ कल्पनाओं में होती है। क्या केवल इस कारण हम उत्कृष्टता के लिए प्रयास करना बंद कर दें?

response@jagran.com

ऊर्जा

आस्था

वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों का पतन तेजी से हो रहा है। मनुष्य-मनुष्य के बीच अविश्वास की खाई चौड़ी होती जा रही है। इस सामाजिक समस्या के कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं। पहला कारण तो यही कि लोगों में चरित्रहीनता बढ़ी है। दूसरा, नैतिकता घटी है। तीसरा, ईश्वर के प्रति विश्वास घटा है। इन बिंदुओं पर विचार करने पर यह निहितार्थ निकलता है कि मानो चरित्र शब्द कुछ समय बाद शब्दकोश का ही विषय होगा। समाज में कोई विरला चरित्रवान दिखाई देगा, जिसे आदर्श माना जा सके। संस्कारों के अभाव में नैतिकता का स्तर गिरना स्वाभाविक है। जबकि नीति से गिरा हुआ समाज कभी उन्नति नहीं कर सकता। आज के दिखावे के युग में आयोजन तो बहुत हो रहे हैं, किंतु उनके मानवीय सरोकार नहीं हैं। इसीलिए इन आयोजनों से कोई सामूहिक हित नहीं होता।

अध्यात्म के बिना भौतिक उत्थान का कोई महत्व नहीं है। हृदय निर्मल नहीं है तो सुगंध कहां से आएगी? इसीलिए हृदय की पवित्रता को विशेष महत्व दिया गया है। हृदय के पवित्र भाव ही बाह्य रूप में भक्ति, सरलता और आचरण के रूप में प्रकट होते हैं, किंतु इस आचरण के अभाव में सर्वत्र अराजकता दिखाई देती है। जीवन से सुख, शांति और सरलता मानो विदा हो चुकी हैं। ऐसे में परमात्मा का आधार ही सुख एवं आनंद प्राप्ति का कारण है। इस संदर्भ में गुरुनानक की वाणी अत्यंत सार्थक है 'नानक दुखिया सब संसार, सुखी वही जो एक अधार।' परमात्मा की अनुभूति हमारे कल्याण का कारण है। इसलिए जीवन में ईश्वर के प्रति आस्था रखते हुए मानवीय नैतिक मूल्यों पर अमल करना चाहिए।

तमाम उदाहरण हैं, जिनसे आस्था, नीति, चरित्र, भक्ति और अध्यात्म की महिमा प्रमाणित हो जाती है। पांडवों की जीत नीतिमार्ग की जीत है। तमाम संकटों के बावजूद वे विजय प्राप्त करने में सफल रहे। शिवाजी और महाराणा प्रताप के चरित्र हमारी धरोहर हैं। वे न केवल वीरता के प्रतीक थे, बल्कि न्याय और नीति के अनुयायी थे। शत्रु तक उनके चरित्र के कायल थे। ध्रुव और प्रह्लाद ईश्वर भक्ति के उदाहरण हैं। आचार्य शंकर, रामानुज आदि अध्यात्म के प्रतीक हैं। ईश्वर के प्रति आस्था के बल पर ही उन्होंने मनुष्य मात्र की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

विजय नारायण गुप्त

सिंगल टाइम जोन होने का नुकसान

फिर से

अगर भारत दो मानक समय की नीति अपना ले तो देश को सालाना 452 करोड़ रुपये से अधिक की मानव पूंजी का लाभ मिलेगा

पूर्व से पश्चिम तक भारत 3,000 किलोमीटर यानी 1,864 मील तक चौड़ा है। देशांतर रेखा पर देखें तो ये कम से कम 30 डिग्री तक के इलाके में फैला है। सूर्य को आधार बना कर होने वाली समय की गणना के अनुसार इसका मतलब है कि एक छोर से दूसरे छोर तक समय का फर्क कम से कम दो घंटे का है। इस छोटे से फर्क का असर लाखों लोगों पर पड़ रहा है।

भारत के सूदूर पश्चिमी छोर के मुकाबले देश के पूर्व में सूर्योदय तकरीबन दो घंटे पहले होता है। पूरे देश के लिए एक मानक समय की आलोचना करने वालों का कहना है कि देश के पूर्वोत्तर में सूर्य की रोशनी का पूरा इस्तेमाल करने के लिए ये जरूरी है कि भारत में दो मानक समय को स्वीकार किया जाए। पूर्व में सूर्य की रोशनी जल्दी पड़ती है और इस कारण वहां इसका इस्तेमाल पहले शुरू हो सकता है। हमारे शरीर के भीतर एक घड़ी होती है जो एक नियत ताल पर चलती है, इसे सिर्काडियन रिदम कहते हैं। सूर्य का उदय होना और ढलना इस ताल को सीधे तौर पर प्रभावित करता है। जैसे-जैसे सांझ होने लगती है हमारे शरीर में नींद को प्रभावित करने वाला हॉर्मोन मेलाटोनिन बनता है, इस कारण व्यक्ति को नींद आने लगती है। कॉर्नेल विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्री मौलिक जगनानी कहते हैं कि पूरे देश में एक ही मानक समय होने का असर बच्चों की नींद की गुणवत्ता पर पड़ता है। इसका सीधा असर उनकी शिक्षा पर पड़ता है। चूंकि पूरे भारत में एक ही मानक समय को अपनाया गया है तो देश भर के स्कूल लगभग एक ही समय पर खुलते हैं, लेकिन जिन जगहों पर सूर्य देर से अस्त होता है वहां बच्चे देर से सोने जाते हैं और इस कारण उन्हें कम नींद मिलती है।

दो मानक समय जोन को अपनाने को लेकर भारत में लंबी बहस चली है। 1980 के दशक के आखिर में एक नामी ऊर्जा संस्थान के शोधकर्ताओं के एक दल ने बिजली बचाने के लिए एक मानक समय की व्यवस्था सुझाई थी। 2002 में एक सरकारी पैनल ने इसमें मुश्किलों का हवाला देते हुए इस तरह के एक प्रस्ताव को ठंडे बस्ते में डाल दिया था। कुछ विशेषज्ञों को लगता है कि इसमें ट्रेनों के एक्सीडेंट का खतरा अधिक है, क्योंकि अलग मानक समय जोन में प्रवेश करते ही उनका समय बदलना जरूरी होगा। हालांकि बीते साल आधिकारिक भारतीय टाइमकीपर्स ने खुद ही दो मानक समय जोन का सुझाव दिया था-एक मानक समय देश के आठ उत्तर पूर्वी राज्यों के लिए और दूसरा शेष भारत के लिए। इन दोनों मानक समय जोन में एक घंटे का फर्क सुझाया गया था।

नेशनल फिजिकल लेबोरेटरी के शोधकर्ताओं के अनुसार एक ही मानक समय जोन का होना जीवन को बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है, क्योंकि आधिकारिक तौर पर काम करने के समय से काफी जल्दी सूर्योदय और सूर्यास्त होता है। जल्दी सूर्योदय होने के कारण दफ्तरों में काम के घंटों का नुकसान होता है, क्योंकि स्कूल और कॉलेज सूरज की रोशनी का सही लाभ लेने के लिए देरी से खुलते हैं। सर्दी के दिनों में हालात और बुरे हो जाते हैं, क्योंकि सूरज जल्दी ढलता है और काम बंद न हो इसलिए बिजली की खपत भी बढ़ जाती है।

(साभार : बीबीसी में सौतिक बिस्वास)

अफवाहों से बचें

सोशल मीडिया की अफवाहें शीर्षक से लिखे अपने लेख में सृजनपाल सिंह ने सोशल मीडिया का दुरुपयोग रोकने के लिए इससे संबंधित संस्थाओं को कड़ा रुख अपनाने को जरूरी बताया है। इसे लेकर केंद्र सरकार ने वॉट्सएप को चेतावनी भी दी कि वह अफवाह फैलाने वाली खबरों, वीडियो और तस्वीरों पर लगाम लगाने के लिए गंभीरता दिखाए। सरकार की चेतावनी के बाद वॉट्सएप ने इसके लिए जरूरी कदम भी उठाए हैं। लेकिन सरकार को चाहिए कि वह सोशल मीडिया पर जो लोग अफवाहें फैलाते हैं, उनके खिलाफ भी कठोर सजा का प्रावधान करे ताकि कोई अफवाह किसी की जान की दुश्मन न बन पाए या देश के किसी कोने की शांति भंग न कर सके। यह बात तो सच है कि हम सब आजाद देश के नागरिक हैं। लेकिन आजादी का यह मतलब नहीं है कि हमारे दिल में जो भी आया उसे सोशल मीडिया पर लिख दिया। हम सब को चाहिए कि सोशल साइटों पर कोई ऐसा भड़काऊ पोस्ट न करें जिससे कि सरकार को मजबूर होकर इन पर बैन लगाना पड़ जाए। जैसा कि कुछ देशों में हो भी चुका है। सोशल साइटों पर ऐसे कमेंट लिखने चाहिए जिससे देश में प्यार, भाईचार और एकता की भावना बढ़े न कि दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुंचे और देश में किसी प्रकार की कोई अशांति फैले।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

लोकतंत्र के निर्माण में सहायक बनें

भारत एक लोकतांत्रिक देश होने के साथ-साथ विश्व में सबसे बड़ा लोकतंत्र है। जहां आम जनमानस गांव से लेकर देश की सरकार का चयन करते हैं। हमारे देश में 18 साल से ऊपर प्रत्येक जन को मतदान का अधिकार है, परंतु सर्वाधिक मतदान ना होना देश का दुर्भाग्य है। जबकि सबसे अधिक युवा लगभग 65 फीसद हमारे देश में हैं। बावजूद इसके लोकतंत्र की भागीदारी में कमी रह जाना चिंता की बात है। इसकी जिम्मेदारी देश के प्रत्येक नागरिक को लेनी होगी। मतदाताओं को वोट का महत्व समझना होगा। अगर हम मतदान नहीं करते तो हमें चुनी हुई सरकार पर अंगुली उठाने का भी कोई अधिकार नहीं है। अक्सर लोगों की सोच होती है कि एक वोट से क्या होगा। जिस प्रकार बूंद-बूंद से घड़ा भरता है, ठीक उसी प्रकार एक-एक वोट से भारत के लोकतंत्र का निर्माण होता है। बीती घटनाओं पर नजर डालें तो 1999 में अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा अविश्वास प्रस्ताव में एक वोट न होने से उनको प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा देना पड़ा था।

sdarshan676@gmail.com

मेलबाक्स

मुद्दों पर हो सियासत

जवानों के नाम पर हो रही सियासत पर चुनाव आयोग द्वारा सख्त टिप्पणी के बावजूद चुनाव प्रचार में जवानों के नाम का सहारा लिया जा रहा है। कर्नाटक और महाराष्ट्र की चुनावी रैलियों में प्रधानमंत्री ने वोटरों से अपील की कि वह अपना पहला वोट उन जवानों को समर्पित करें, जिन्होंने देश के लिए जान दी है। जवानों के शहादत पर सियासत प्रधानमंत्री पद की गरिमा और जवानों के मनोबल को कमजोर करता है। हालांकि चुनाव आयोग ने इस बात का संज्ञान लिया है। अब इस पर कितना अमल होता है यह देखने वाली बात होगी। साथ ही यह भी देखना होगा कि चुनाव के दौरान जवानों के नाम पर वोट मांगने वाले चुनाव के बाद शहीदों को कितना याद करते हैं। चुनाव के दौरान देश की मजबूत अर्थव्यवस्था को मुद्दा बनाया जाना चाहिए। रोजगार पर सियासत होनी चाहिए कि कौन सियासी दल रोजगार के कितने अवसर प्रदान करेगा।

मुहम्मद आसिफ, जामिया नगर दिल्ली

लोकलुभावन वादों की हकीकत

10 अप्रैल के अंक में त्रिलोचन शास्त्री का लेख 'मुफ्तखोरी की खतरनाक प्रवृति' पढ़ा। राजनीतिक पार्टियां चुनाव जीतने के लिए अपने घोषणा पत्रों में जिस तरह से लोगों को खैरात बांटने का काम कर रही हैं, वह न तो देशहित में है और न ही जनता के हित में। सभी राजनितिक दल समाज की भलाई के नाम पर मुफ्तखोरी का सहारा लेकर एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। दिखाया तो यह जाता है कि समाज की भलाई के लिए क्या किया जा रहा है, जबकि वास्तविक मंशा सरकारी पैसे से वोट खरीदने की होती है। चुनाव के दौरान पैसे, शराब और विभिन्न प्रकार के उपहार बांटे जाते हैं। क्या ये उचित है। इस पर देश की न्यायपालिका और चुनाव आयोग को विचार जरूर करना चाहिए। मुफ्तखोरी से किसी का भला नहीं होता। बेहतर होगा कि ऐसे लोकलुभावन वादों से बचा जाए।

चंद्र प्रकाश शर्मा, रानी बाग, दिल्ली

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली काया 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं न हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय ाई शुल्क अतिरिक्त।